उत्तर—गाँधीजी के अनुसार, 'सत्य ही ईश्वर है।' परन्तु प्रश्न उठता है कि वह सत्य जो ईश्वर है और जिसकी प्राप्ति जीवन का उद्देश्य है, क्या है ?

गाँधीजी के मतानुसार 'सत्य' सत शब्द से निकला है, इसका अर्थ है अस्तित्व या होना। सत्य को ईश्वर या ब्रह्म कहने का यह कारण है कि सत्य वही है जिसकी सत्ता होती है, जो सदा टिका रहता है। ब्रह्म या परमात्मा की सत्ता तीनों कालों में बनी रहती है, अतः यह सत्य का है। गाँधीजी अपने जीवन का ध्येय सत्य की शोध करना समझते थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा का नाम 'मेरे सत्य के प्रयोग' रखा है।

सामान्यतः सत्य शब्द का अर्थ केवल सच बोलना ही समझा जाता है, लेकिन गाँधीजी ने सत्य व्यापकतम अर्थ लेते हुए बार-बार यह आग्रह किया है कि विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है। गाँधीजी की दृष्टि में सत्य की आराधना ही सच्ची भक्ति है।

गाँधीजी के अनुसार दैनिक जीवन में सत्य सापेक्ष है, किन्तु सापेक्ष सत्य के माध्यम से एक निरपेक्ष सत्य पर पहुँचा जा सकता है और यह निरपेक्ष सत्य ही जीवन का चरम लक्ष्य है, इसकी प्राप्ति ही मनुष्य का परम धर्म है।

गाँधीजी की सत्य के परिवेश में केवल व्यक्ति ही नहीं आता है, अपितु इसमें समूह और समाज का भी समावेश है। वे चाहते हैं कि सम्पूर्ण सत्य का पालन धर्म, राजनीति, अर्थ-नीति, परिवार-नीति सब में होना चाहिए। राजनीति में सत्य के पूर्ण पालन का उनका नवीन प्रयोग तो विश्व इतिहास के लिए एक अविस्मरणीय घटना है।

गाँधीजी की अहिंसा अवधारणा—प्राचीन काल से भारत में अहिंसा का अत्यधिक महत्व रहा है। योग दर्शनकार पतंजलि ने आत्मशुद्धि की साधना के पाँच यमों में अहिंसा को पहला स्थान दिया है। जैन धर्म में अहिंसा का अत्यधिक महत्व रहा है। महात्मा गाँधी पर इंग्लैण्ड से लौटने के बाद रामचन्द्र नामक जैन विद्वान का बड़ा प्रभाव पड़ा। भगवान बुद्ध ने घोषणा की थी कि वैर का अन्त वैर से नहीं, किन्तु प्रेम से होता है। गाँधीजी ने उपर्युक्त भारतीय परम्परा से तथा बाइबिल के पर्वत प्रवचन से तथा टॉलस्टाय के ग्रन्थों से अहिंसा के सिद्धान्त को ग्रहण किया, किन्तु उन्होंने अनेक क्षेत्रों में इसका व्यावहारिक प्रयोग करके इसकी सफलता को निर्विवाद रूप से प्रमाणित किया।

अहिंसा का अर्थ—अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है हिंसा या हत्या न करना। हिंसा का अर्थ किसी भी जीव को स्वार्थवश, क्रोधवश या दुख देने की इच्छा से कष्ट पहुँचाना या मारना है। हिंसा के मूल में स्वार्थ, क्रोध या विद्वेष की भावना होती है। इसके विपरीत अहिंसा के अनुयायी को इन सभी भावनाओं पर विजय पाते हुए प्राणी मात्र के प्रति प्रेम और मैत्री की भावना रखनी होती है जिसे गाँधीजी अहिंसा कहते हैं।

गाँधीजी के लिए अहिंसा का अर्थ अत्यन्त व्यापक है जिसमें कार्य ही नहीं, अपितु विचार में भी सावधान रहना आवश्यक है। किसी को न मारना अहिंसा का एक अंग अवश्य है, किन्तु अहिंसा में इसके अतिरिक्त और भी कुछ है। कुविचार मात्र हिंसा है, मिथ्या भाषण

हिंसा है, द्वेष हिंसा है, किसी का बुरा चाहना हिंसा है। जगत को जिस चीज की आवश्कता है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है।

अहिंसा के दो पक्ष—अहिंसा के दो पक्ष हैं–नकारात्मक तथा सकारात्मक। किसी प्राणी को काम, क्रोध तथा विद्वेष से वशीभूत होकर हिंसा न पहुँचाना, इसका नकारात्मक रूप है, किन्तु इससे अहिंसा का पूरा स्वरूप समझ में नहीं आता है। अंहिसा का यथार्थ स्वरूप तो हमें इसके भावात्मक पक्ष से पता लगता है। भावात्मक अथवा सकारात्मक स्वरूप वाला अहिंसा को सार्वभौम प्रेम और करुणा की भावना कहा जाता है। इसके चार मूल तत्व, प्रेम, धैर्य, अन्याय का विरोध और वीरता हैं।

जिस प्रकार हिंसा का आधार विद्वेष होता है उसी प्रकार अहिंसा का आधार प्रेम है। अहिंसा का व्रत लेने वाला साधक अपने उग्रतम शत्रु से भी वैसा ही प्रेम रखता है जैसा पिता बुरा कार्य करने वाले अपने पुत्र से स्नेह करता है। वह शत्रु की बुराई से घृणा करता है न कि शत्रु से। अहिंसा तथा प्रेम की शक्ति से वह शत्रु की बुराई दूर करने का प्रयत्न करता हैं। वह स्वयं प्रसन्नतापूर्वक कष्ट सहन कर लेता है, किन्तु शत्रु को कष्ट नहीं पहुँचाता। अहिंसा का दूसरा तत्त्व अनन्त धैर्य है। यदि अहिंसक को अपने प्रयत्न में जल्दी सफलता नहीं मिलती तो वह निराश नहीं होता। उसे दृढ़ विश्वास रहता है कि अहिंसा अचूक ब्रह्मास्त्र है, वह अन्त में अवश्य सफल होगी। भारी असफलताएँ मिलने के बावजूद अहिंसक हिम्मत नहीं हारता और धैर्यपूर्वक अपने पथ पर आगे बढ़ता रहता है। अहिंसा का तीसरा तत्व अन्याय का प्रतिरोध करना है। अहिंसा निष्क्रियता या उदासीनता नहीं है अपितु बुराई का तथा अन्याय का सतत् प्रतिकार करते रहना है। अहिंसक अन्यायी के अत्याचारों से घबराता नहीं है अपितु वीरतापूर्वक उनका सामना करता है, अतः अहिंसा का चौथा मूल तत्व वीरता है। गाँधीजी ने इस पर बहुत बल दिया है। उनके मतानुसार अहिंसा साहसी और वीर पुरुषों का गुण है, निर्बलों और कायरों का हथियार नहीं। अन्धकार और प्रकाश की तरह कायरता और अहिंसा में विरोध है। अहिंसा के प्रयोग तभी महत्व रखते हैं जब हम बलवान होते हुए तथा पशुबल का पूरा सामर्थ्य रखते हुए भी इसका प्रयोग न करें। अहिंसक योद्धा का सबसे बड़ा गुण वीरता और निर्भयता है। इसमें शस्त्र युद्ध की अपेक्षा अधिक साहस अपेक्षित है, क्योंकि इसमे सबसे बड़ा हथियार उसकी आत्मा का बल है। ऐसा वीरतापूर्ण आत्मबल न होने की दशा में गाँधीजी हिंसा और बल प्रयोग को अधिक श्रेष्ठ समझते थे। एक बार उन्होंने स्वयं कहा था, "विदेशी राज्य के सामने दीन भाव से अपनी प्रतिष्ठा खोने की अपेक्षा यह कहीं अधिक अच्छा है कि भारत शस्त्र धारण करके आत्मसम्मान की रक्षा करें।"

अहिंसा का आधार—गाँधीजी की अहिंसा का आधार अद्वैत की भावना है। उनका विश्वास था कि सृष्टि की सभी वस्तुओं में एक ही चेतन सत्ता या ब्रह्म ओत-प्रोत है। सभी में भगवान का दिव्य अंश है। जब सब कुछ भावना का रूप है और मैं भी वास्तव में उसी का रूप हूँ तो मैं किसी से कैसे द्वेष कर सकता हूँ। यह अद्वैत की भावना सृष्टि के सभी प्राणियों के प्रति मुझे आत्मरूप होने के कारण प्रेम और अहिंसा के धर्म का पालन करने के लिए बाधित करती है।

अहिंसा की तीन अवस्थाएँ—गाँधीजी ने अहिंसा का निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ बतायी हैं :

1. जागृत अहिंसा—इसे वीर पुरुषों की अहिंसा भी कहते हैं। यह वह अहिंसा है जो किसी दुःखपूर्ण अवस्था से पैदा न होकर अन्तरआत्मा की स्वाभाविक पुकार से जन्म लेती है। इसको अपनाने वाले अहिंसा को बोझ समझ कर स्वीकार नहीं करते वरन् आन्तरिक विचारों

की उत्कृष्टता का नैतिकता के कारण स्वीकार करते हैं। सबल व्यक्ति इसे अपनाते हैं और वे शक्ति सम्पन्न होकर भी शक्ति का तनिक-सा भी प्रयोग नहीं करते। अहिंसा के इस रूप को केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु जीवन के सभी क्षेत्रों में दृढ़ता के साथ अपनाया जाना चाहिए। अहिंसा के इस रूप में असम्भव को सम्भव में बदलने और पहाड़ों को हिला देने की अपार शक्ति निहित है।

2. औचित्यपूर्ण अहिंसा—इस प्रकार की अहिंसा वह है जो जीवन के किसी क्षेत्र में विशेष आवश्यकता के पड़ने पर औचित्यानुसार एक नीति के रूप में अपनायी जाती है। यह अहिंसा निर्बल व्यक्तियों की अहिंसा है या असहाय व्यक्तियों का निष्क्रिय प्रतिरोध। इसमें नैतिक विश्वास के कारण नहीं वरन् निर्बलता के कारण ही अहिंसा का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि यह अहिंसा की भाँति प्रभावशाली नहीं है फिर भी यदि इसका पालन ईमानदारी, सच्चाई और दृढ़ता से किया जाय तो इससे कुछ सीमा तक वांछित लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। आगे चलकर गाँधीजी ने इस प्रकार की अहिंसा को अस्वीकार करते हुए कहा था, "निर्बलों की अहिंसा जैसी कोई चीज नहीं है, दुर्बलता और अहिंसा परस्पर विरोधी है।"

3. कायरों की अहिंसा—कई बार डरपोक तथा कायर लोग भी अहिंसा का दम्भ भरते हैं। गाँधीजी ऐसे लोगों की अहिंसा को अहिंसा न मानकर 'निष्क्रिय हिंसा' मानते हैं। उनका विश्वास था कि 'कायरता और अहिंसा पानी और आग की भाँति एक साथ नहीं रह सकते।' अहिंसा वीरों का धर्म है और अपनी कायरता को अहिंसा की ओट में छिपाना निन्दनीय तथा घृणित है। यदि कायरता और हिंसा में से किसी एक का चुनाव करना हो तो गाँधीजी हिंसा को स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में उनका यह स्पष्ट विचार है कि, "यदि हमारे हृदय में हिंसा भरी है तो हम अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए अहिंसा का आवरण पहने, इससे हिंसक होना अधिक अच्छा है।" वस्तुतः गाँधीजी कायरता के पक्ष में कभी नहीं थे।

अहिंसा की श्रेष्ठता—गाँधीजी इतिहास के आधार पर अहिंसा की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं। द्वन्द्वात्मक संघर्ष में विश्वास रखने वाले कार्ल मार्क्स से सर्वथा विपरीत वे मानव समाज के इतिहास को उसकी अहिंसा का निरन्तर अग्रगामी विकास मानते हैं। आदिम जातियों के बारे में कहा जाता है कि वे नर माँस-भक्षी थीं, किन्तु बाद में मनुष्यों ने मनुष्य का माँस खाना अनुचित समझा, शिकार द्वारा पशुओं के माँस से उदर पूर्ति करने लगे। कुछ समय बाद मानव ने आखेट द्वारा आहार प्राप्त करने की पद्धति का परित्याग किया क्योंकि निरन्तर भटकते रहने वाले शिकारी जीवन से वह ऊब गया था। अब उसने पशुओं को मारने के स्थान पर उनका पालन करना तथा खेती करना शुरू कर दिया। उससे उसके जीवन में स्थिरता आई गाँवों, नगरों, राष्ट्रों तथा सभ्यता का विकास हुआ। इस प्रकार सभ्यता के उपर्युक्त विकास से यह स्पष्ट है कि इतिहास में हिंसा का प्रयोग निरन्तर घटता जा रहा है और अहिंसा का प्रयोग बढ़ रहा है। यदि ऐसा न होता, हिंसा बढ़ती चली जाती और अहिंसा की मात्रा घटती जाती है, तो मानव जाति बहुत पहले ही नष्ट हो जाती।

ऐतिहासिक विकास के अतिरिक्त अहिंसा अन्य कई कारणों से भी श्रेष्ठ है :

पहला कारण, यह है कि यह आत्मिक शक्ति है जो छोटे से छोटे तथा कमजोर से कमजोर बच्चों और बूढ़ों में भी पायी जा सकती है। शस्त्रों द्वारा हिंसात्मक लड़ाई केवल नौजवान ही लड़ सकते हैं, किन्तु प्रेम की शक्ति का प्रयोग एक अत्यन्त बूढ़ी और दुर्बल माँ अपने बलवान, किन्तु पथ-भ्रष्ट पुत्र को सन्मार्ग पर ला सकता है। प्रेम की शक्ति का प्रयोग पशुओं पर भी हो सकता है।

दूसरा कारण, अहिंसा का सतत् एवं स्वतः क्रियाशील होना है। इसके प्रयोग के लिए हमें शारीरिक शक्ति का सहारा नहीं लेना पड़ता। शारीरिक शक्ति का प्रयोग करने वाले को किसी-न-किसी प्रकार के विश्राम की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु अहिंसा व्रतधारी के लिए विश्राम आवश्यक नहीं है, क्योंकि उसको किन्हीं बाह्य शास्त्रों का प्रयोग न करके हृदय के भीतर सदैव कार्य करने वाली प्रेम की भावना का प्रयोग करना है।

तीसरा कारण, यह है कि अहिंसा का आत्मबल शत्रु पर अचेतन एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालता है और यह शस्त्र बल की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। शस्त्र बल रखने वाले की कार्यवाही तात्कालिक एवं क्षणिक प्रभाव डालने वाली होती है, किन्तु अहिंसा और प्रेम का प्रभाव अप्रत्यक्ष एवं स्थायी होता है।

चौथा कारण, हिंसा की विफलता और अहिंसा की निश्चित सफलता है। अहिंसा और प्रेम कुछ समय के लिए विफल हो सकते हैं, किन्तु उनकी अन्तिम सफलता निश्चित है, क्योंकि अहिंसा और प्रेम में पत्थर जैसे दिलों को भी पिघलाने की सामर्थ्य है।

गाँधीजी की अहिंसा की विशेषताएँ—गाँधीजी की दो बड़ी विशेषताएँ हैं : पहली विशेषता इसका सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन है तथा दूसरी इसके क्षेत्र का विस्तार करके इसे नयी गति तथा नया विस्तार प्रदान करना है।

पहली विशेषता—गाँधीजी से पहले अहिंसा का सामान्य अर्थ किसी-जीव का प्राण न लेना तथा इसे खान-पान के विषय तक सीमित रखना था। गाँधीजी ने इसका विस्तृत विवेचन करते हुए कहा कि यह खाद्याखाद्य के विषय से परे है। माँसाहारी अहिंसक हो सकता है, फलाहारी या अन्नाहारी घोर हिंसा करते देखे जाते हैं। एक व्यापारी झूठ बोलता है, ग्राहकों को ठगता है, कम तौलता है, किन्तु यह व्यापारी चींटी को आटा डालता है, फलाहार करता है। फिर भी यह व्यापारी उस माँसाहारी व्यापारी की अपेक्षा अधिक हिंसक है, जो माँसाहार करते हुए भी ईमानदार है और किसी को धोखा नहीं देता। इस प्रकार गाँधीजी ने जीव हिंसा की विवेचना करते हुए अहिंसा की परम्परागत परिभाषा और सीमा में नवीन क्रान्तिकारी परिवर्तन और विस्तार किया।

दूसरी विशेषता—अहिंसा के कार्यक्षेत्र का विस्तार है। गाँधीजी ने अहिंसा को व्यक्तिगत और पारिवारिक क्षेत्र की संकीर्ण परिधि से निकालकर इसे सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सभी प्रकार के अन्यायों का प्रतिकार करने का शस्त्र बनाया। इसे ऋषि-मुनियों तक मर्यादित न रखकर सार्वजनिक और सार्वभौम बनाया गाँधीजी के शब्दों में, "अहिंसा यदि व्यक्तिगत गुण है तो मेरे लिए त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है। वह करोड़ों की है। मैं तो उसका सेवक हूँ .... हम तो यह सिद्ध करने के लिए पैदा हुए हैं कि सत्य और अहिंसा व्यक्तिगत आचार के नियम नहीं हैं। वे समुदाय, जाति और राष्ट्र की नीति का रूप ले सकते हैं, अहिंसा सबके लिए है, सब जगहों के लिए है, सब समय के लिए है।" हरिजन सेवक में उन्होंने लिखा था, "हमें सत्य और अहिंसा को केवल व्यक्तियों की वस्तु नहीं बनाना है, बल्कि ऐसी वस्तु बनाना जिस पर समूह, जातियाँ और राष्ट्र अमल कर सकें।" अहिंसा के विषय में गाँधीजी की यह सबसे बड़ी मौलिक देन थी। भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा के सफल प्रयोग से उन्होंने अपने उपर्युक्त दावे की सत्य सिद्ध किया।

गाँधीजी की अहिंसा धारणा की व्यावहारिकता—गाँधीजी की अहिंसा धारण के विवेचन से यह प्रश्न उठता है कि क्या मनसा, वाचा, कर्मणापूर्ण अहिंसा का आदर्श व्यावहारिक है? क्या कोई व्यक्ति गीता में वर्णित उस अवस्था तक पहुँच सकता है कि जहाँ पहुँचकर

वह हर प्रकार की दुर्भावना से मुक्त हो जाए, सबके प्रति मैत्री और दया भाव से पूरित हो ? इस सम्बन्ध में गाँधीजी ने अपना स्पष्टीकरण दिया है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि हिंसा से सर्वथा मुक्त होना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। पूर्ण अहिंसा की सिद्धि मनुष्य नहीं कर सकता। हिंसा और अहिंसा के सूक्ष्म अन्तर का बड़ा स्पष्ट दिग्दर्शन कराते हुए गाँधीजी ने वे परिस्थितियाँ बतायी हैं कि जिनमें मनुष्य को हिंसा करनी ही पड़ती है और वह उससे बच नहीं सकता जैसे,

प्रथम, जीवन के भरण-पोषण के लिए जितनी हिंसा अनिवार्य होती है वह क्षम्य होती है। शरीर ईश्वर की धरोहर है जिसे नष्ट करने का व्यक्ति को कोई अधिकार नहीं है। शरीर के पोषण और संरक्षण के लिए जान-बूझकर दूसरे जीवों को हत्या नहीं की जानी चाहिए, किन्तु जो हिंसाएँ अनजाने होती हैं, उनके लिए चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। यह मनुष्य की विवशता है। गाँधीजी अहिंसा के सम्बन्ध में कल्पनावादी नहीं, व्यावहारिक थे। उन्होंने मनुष्यों या सम्पत्ति को हानि पहुँचाने वाले जीव-जन्तुओं को मारने की अनुमति दी है। यदि जंगल में जाते हुए शेर, चीते या सड़क पर निकलते हुए पागल कुत्ते, आदि जीवन को समाप्त करने के लिए आक्रमण कर दें तो उनका वध भी हिंसा की श्रेणी में नहीं आता। यह हिंसा "संकटकालीन कर्त्तव्य" कही जाती है और विहित है। यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि गाँधीजी हिंसक जीव-जन्तुओं की हत्या की अनुमति देते अवश्य हैं, लेकिन उनके हृदय का भाव यही है कि यदि मनुष्य अहिंसा का पालन यथोचित रूप से करे तो हिंसक जीव भी मनुष्य को हानि नहीं पहुँचायेंगे।

द्वितीय, शरणागत की रक्षा के लिए की गयी हिंसा भी अनिन्दनीय है। यदि कोई आततायी हमारे आश्रितों के जीवन से खिलवाड़ करने के लिए आये तो उसका बध करना भी हिंसा नहीं होगी। स्त्रियों और बच्चे प्रत्येक समाज में मनुष्य के आश्रित हैं, यदि उन पर कोई व्यक्ति अत्याचार करता है तो प्रत्येक व्यक्ति को उसकी हत्या कर देनी चाहिए।

तृतीय, जिस व्यक्ति या प्राणी की हिंसा की जाए, उसको दुखों से छुटकारा दिलाने के लिए यह आवश्यक हो तो ऐसी हिंसा अपराध नहीं है। उदाहरणार्थ, यदि किसी का रोग असाध्य हो जाए और चारों ओर निराशा हो तो उस व्यक्ति या प्राणी को मारना पाप या हिंसा नहीं। गाँधीजी ने अपने आश्रम में तड़पते हुए मरणासन्न बछड़े को कष्ट से मुक्त करने के लिए जहर देने की अनुमति दी थी। यह हिंसा अवश्य हुई, किन्तु यह क्षम्य है, क्योंकि इससे पीछे असीम तथा पर-दुख कायरता का भाव निहित है। उन्होंने कहा था-"यदि मेरा पुत्र भी तड़प रहा हो और उसका कोई इलाज नहीं हो तो मुझे उसके जीवन को समाप्त करना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए।"

आलोचना—कतिपय आलोचक यह आपत्ति उठाते हैं कि ऐसे 'आदर्श' की क्या उपयोगिता है जिसे व्यवहार में न लाया जा सके और जिसके लिए कतिपय अपवाद करने पड़ें। इस आपत्ति का समाधान गाँधीजी यह कहकर करते हैं कि वह आदर्श जो पूर्ण रूप से व्यवहार में परिणत किया जा सके, वास्तव में एक बहुत ही तुच्छ आदर्श है। जीवन का आनन्द लक्ष्य को प्राप्त करने में नहीं, बल्कि उसके लिए सदैव प्रयत्न करते रहना है, हम उसके निकट पहुँच सकते हैं, किन्तु उसे पूर्ण रूप से कभी प्राप्त नहीं कर सकते। अहिंसा का आदर्श गणितशास्त्र के उस बिन्दु के समान है जिसकी पूर्ण उपलब्धि तो सम्भव नहीं है, लेकिन यथार्थ जीवन में जिसके निकट हम अवश्य पहुँच सकते हैं।

संक्षेप में, गाँधीजी ने अहिंसा को अपना धर्म स्वीकार करके अपने को असहाय कभी अनुभव नहीं किया। उनके कथनानुसार "कठोर धातु भी पर्याप्त ताप के आगे पिघल जाती